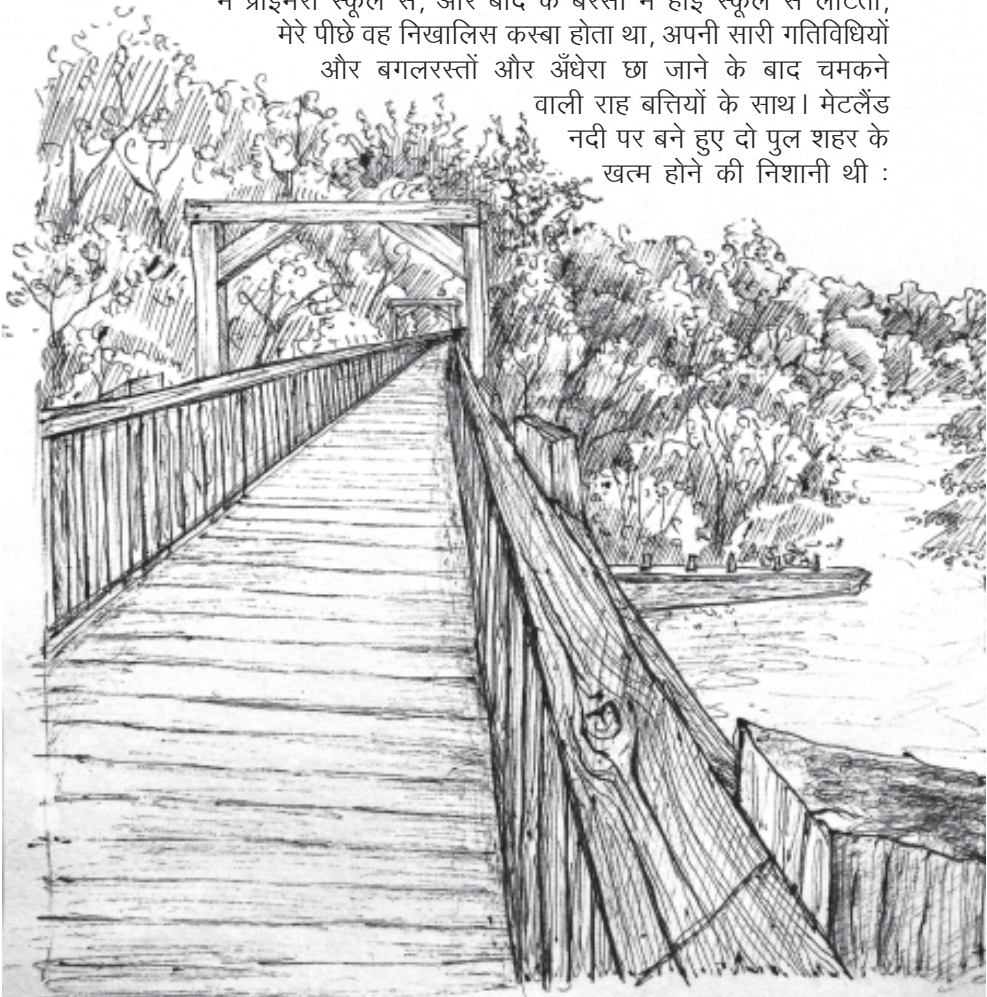


# डियर लाइफ

एलिस मुनरो

जब मैं छोटी थी, एक लम्बी सड़क के आखिरी सिरे पर रहती थी, या ऐसा कहूँ कि उस सड़क पर रहती थी जो मुझे बेहद लम्बी लगती थी। जब मैं प्राइमरी स्कूल से, और बाद के बरसों में हाई स्कूल से लौटती, मेरे पीछे वह निखालिस कस्बा होता था, अपनी सारी गतिविधियों और बगलरस्तों और अँधेरा छा जाने के बाद चमकने वाली राह बत्तियों के साथ। मेटलैंड नदी पर बने हुए दो पुल शहर के खत्म होने की निशानी थी :



लोहे से बना एक सँकरा पुल, जहाँ कारें अक्सर भ्रम में पड़ जातीं कि कौन रुक जाए और कौन आगे बढ़कर पार कर ले। और दूसरा था लकड़ी का बना पैदल पुल, जिसमें एक फट्टा अक्सर गायब रहता था। उसकी उतनी जगह खाली रहती थी। चलते समय आप उसमें से झाँक नीचे, जल्दबाज़ी में दौड़ते पानी को निहार सकते थे। मुझे वैसा करना पसन्द था, लेकिन जल्द ही कोई-न-कोई उसकी मरम्मत कर नया फट्टा लगा जाता।

उसके बाद हल्का-सा एक गड्ढा था, दो-तीन जर्जर मकान थे जिनमें हर बारिश पानी भर जाता था, फिर भी जाने कहाँ से आए हुए लोग उनमें रहते थे। उसके बाद एक और पुल था, जो खुद ही इतना गहरा था कि उस पर चलते हुए आपको हर समय डूब जाने का डर लगे। उसके बाद रास्ता दो हिस्सों में बँट जाता, एक दक्षिण में पहाड़ी के ऊपर चढ़ जाता, वहाँ से घूमकर फिर नदी के ऊपर आ जाता, वहाँ से वह सच में हाइवे बन जाता, जबकि दूसरा रास्ता उछलता-कूदता, मेले के पुराने मैदानों को छूता पश्चिम को मुड़ जाता।

पश्चिम वाला यह रास्ता मेरा था। एक और रास्ता था, जो उत्तर की ओर जाता, जिसके किनारे पक्का फुटपाथ बना हुआ था और उस पर कई मकान भी बसे हुए थे, जो इस तरह खड़े थे, जैसे शहर का ही हिस्सा हों। उनमें से एक मकान पर बोर्ड

लगा था - 'सलाद टी', जिसे देखकर ही समझ में आ जाता कि यहाँ कभी किराने का सामान बिकता होगा। उसके बाद एक स्कूल पड़ता, जहाँ मैंने अपने जीवन के शुरुआती दो साल पढ़ाई की थी और दुआ की थी कि कभी यहाँ लौटकर न आऊँ। उन्हीं बरसों में मेरी माँ ने मेरे पिता से ज़िद कर-करके शहर में एक मकान खरीदवा लिया था ताकि उनका परिवार शहर की सीमा में बस सके और मैं एक बड़े स्कूल जा सकूँ। बाद में चीज़ें ऐसी घटीं कि लगा, माँ को वैसा करने की ज़रूरत ही नहीं थी, क्योंकि जब मैंने नए स्कूल जाना शुरु किया, उसी महीने जर्मनी के खिलाफ युद्ध छिड़ गया। जैसे कोई जादू हुआ हो, वह पुराना स्कूल अचानक बन्द हो गया। उस स्कूल में कई दबंग लड़के थे, जो मुझसे मेरा लंच छीन लेते थे, मुझे पीट देने की धमकी देते थे और इतना हुड़दंग होता था कि पता ही न चले, कोई पढ़ भी रहा होगा। जल्द ही वहाँ सिर्फ एक कमरा और एक टीचर बचा, जो कि आधी छुट्टी के दौरान क्लास का दरवाज़ा बन्द तक नहीं करता था। जल्द ही यह भी पता चल गया था कि जो लड़के उकसावे की हद तक प्रतीकों व इशारों से मुझसे पूछते और मेरी देह भोग लेने को उतावले रहते, वे लड़के अब अपने बड़े भाइयों की तरह सेना में एक नौकरी पा लेने को अधीर हो गए थे।

मुझे नहीं पता कि उन स्कूल के

शौचालयों में कोई सुधार हुआ भी है या नहीं, पर उस समय तो वे वाहियात थे। ऐसा नहीं कि हमारे घर के शौचालय शानदार रहे हों, पर बावजूद वे साफ थे, उनकी फर्श चमकीली थी। उसके उलट स्कूल के शौचालय में कोई भी मलत्याग करते समय उसे उस छेद में नहीं गिराता था। यह विरोध का कोई तरीका था या कुछ और, किसी को नहीं पता।

शहर में आने के बाद मुझे कोई खास आसानी नहीं हुई थी। वहाँ भी वही लोग आ गए थे, जो बचपन से मेरे साथ थे और अब भी जीवन की बहुत सारी रीतियाँ मैं सीख नहीं पाई थी, लेकिन फिर भी नए स्कूल के चमकदार फर्श व सीट वाले शौचालय को देखना आरामदेह था। उसके प्लश की शहराती आवाज़ सुनना सुकूनदेह था।

\*\*\*

**जब** मैं पिछले स्कूल में थी, तब एक लड़की मेरी दोस्त बन गई थी। उसका नाम डायना था और दूसरी क्लास का आधा साल बीत जाने के बाद वह आई थी। उसकी उम्र मेरे जितनी ही थी। वह उन्हीं मकानों में रहती थी, जिनके आगे पक्के फुटपाथ बने थे। एक दिन उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं हाइलैंड फिलिंग कर सकती हूँ। मेरे ना कहने पर वह मुझे सिखाने के लिए राज़ी हो गई। यह एक किस्म का नृत्य था, जो जीत की खुशी में किया जाता है। उस रोज़ स्कूल के बाद मैं उसके

घर चली गई। उसकी माँ मर चुकी थी। वह अपने दादा-दादी के साथ रहती थी। उसी ने मुझे बताया कि हाइलैंड फिलिंग नाचने के लिए आपको टक-टक आवाज़ करने वाले जूतों की ज़रूरत होती है। जूते उसके पास थे, लेकिन मेरे पास नहीं थे। हम दोनों के पैरों का आकार एक ही था, इसलिए हमने तय किया कि मैं उसके जूते पहनकर नाच सीख लूँगी। उस बीच हमें प्यास लग गई और उसकी दादी ने पीने के लिए हमें पानी दिया। वह पानी बड़ा भयानक था, एकदम हमारे



स्कूल के कुएँ की तरह। मैंने उन्हें तपस्वी से बताया कि बोरवेल का पानी ज़्यादा स्वादिष्ट होता है। उसकी दादी ने मेरे ऐसे बोलने का ज़रा भी बुरा नहीं माना और बहुत शान्त लहज़े में कहा, “काश हमारे पास भी बोरवेल होता!”

थोड़ी देर बाद ही मेरी माँ उनके दरवाज़े पर खड़ी थी। मुझे घर आने में देरी होता जान वह सीधे स्कूल जा पहुँची, वहाँ से उसे पता चला कि मैं इस लड़की के घर आई हूँ। वह सड़क पर खड़ी अपनी कार का भोंपू बजाए जा रही थी। दादी माँ ने हाथ हिलाकर उसका अभिवादन किया, पर मेरी माँ ने उनकी ओर ध्यान भी न दिया। मेरी माँ जल्दी कार नहीं चलाती और अगर कभी चलाती है, तो समझ लो कि मामला बेहद गड़बड़ है। घर लौटते समय माँ ने मुझे सख्त चेतावनी दी कि तुम आइंदा कभी उस घर नहीं जाओगी। (मुझे खुद से ऐसी कोई सख्ती बरतनी ही नहीं पड़ी क्योंकि उस घटना के कुछ ही दिनों बाद डायना ने स्कूल आना बन्द कर दिया - उसे किसी दूसरे शहर भेज दिया गया था।) मैंने माँ से कहा कि डायना की माँ मर चुकी है, जिस पर माँ ने कहा कि हाँ, उसे पहले से पता है। मैंने माँ को हाइलैंड पिल्ले के बारे में भी बताया। माँ ने कहा, “तुम आराम-से कहीं और सीख लेना, लेकिन उस घर में हर्गिज़ नहीं।”

मुझे उस समय बिलकुल पता नहीं

चला - और सच कहूँ तो पता नहीं, मुझे कब पता चला - कि डायना की माँ वेश्या थी और किसी ऐसे रोग से मरी थी जो अक्सर वेश्याओं को हो जाया करता है। वह चाहती थी कि उसे उसके ही घर में दफनाया जाए और चर्च के मंत्री ने यह दरखास्त मंज़ूर भी कर ली थी। मंत्री ने उस महिला के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया था, उन पर काफी विवाद हुआ था। कई लोग मानते थे कि मंत्री उस मामले को नज़रअन्दाज़ कर सकता था, लेकिन मेरी माँ का कहना था कि उसने जो किया, सही किया।

पाप की कमाई मृत्यु है।

यह बात मेरी माँ ने बरसों बाद मुझसे कही। शायद उतने बरसों बाद जब मैं उस स्थिति में पहुँच गई थी कि अपनी माँ की कही ज़्यादातर बातों से नफरत कर सकूँ, और खासकर उन बातों से, जिन्हें वह थरथराती हुई नाटकीयता या दृढ़ता से कहती थी।

मैं उस दादी के घर अक्सर चली जाती थी। मुझे देखते ही उसके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान आ जाती। मुझे स्कूल जाता देख उसे बेहद खुशी होती थी। वह बताती कि डायना जहाँ कहीं भी थी, वहाँ वह भी स्कूल जाया करती थी, लेकिन उसका स्कूल जल्द ही छूट गया, वह मेरे जितना नहीं पढ़ पाई है। बकौल दादी, उसने टोरंटो में किसी रेस्तराँ में नौकरी कर ली है, जहाँ उसे ऐसी पोशाक पहननी होती है, जिस पर सितारे जड़े हैं। मैं उस दुष्ट उग्र

तक पहुँच चुकी थी, जहाँ दादी की बातें सुन आसानी-से यह अन्दाज़ा लगा सकती थी कि वह रेस्तराँ ज़रूर ऐसी जगह है, जहाँ उसे सितारों जड़ी पोशाक उतारनी भी पड़ती होगी।

\*\*\*

**दूसरे** कई लोगों की तरह डायना की दादी भी सोचती थी कि मैं स्कूल में कुछ ज़्यादा ही बरस बर्बाद कर रही हूँ। मेरी उस सड़क पर कई मकान थे, जो छितराए हुए बसे थे। शहर में होते, तो उनके बीच इतनी जगह न होती। वैसा ही एक मकान छोटी-सी पहाड़ी पर था, जिसमें वैटी स्ट्रीट्स रहा करता था। वह प्रथम विश्वयुद्ध का एक सैनिक था, जिसने अपना एक हाथ खो दिया था। उसके पास कई भेड़ें और एक पत्नी थी। उतने बरसों में उसकी पत्नी को मैंने सिर्फ एक बार ही देखा था, जब वह पम्प पर खड़ी अपना घड़ा भर रही थी। वैटी हमेशा इस बात पर मखौल करता कि मैं स्कूल में इतने बरसों से कर क्या रही हूँ और मैं अभी तक अपनी परीक्षाएँ भी पास नहीं कर पाई हूँ। मैं भी हँस देती थी और ऐसा व्यवहार करती, जैसे उसकी बात सही हो। मुझे कभी पता नहीं चला कि वह दरअसल मेरे बारे में क्या सोचता है।

उस सड़क पर इस तरह मैं लोगों को जानती थी, और लोग इस तरह मुझे जानते थे। आप हैलो कहेंगे, जिसके जवाब में वे भी हैलो कह देंगे, फिर मौसम के बारे में कोई जुमला छोड़

देंगे या मान लो कि मैं पैदल हूँ, वे कार में हैं, तो मुझे भी बिठा लेंगे। वह पूरी तरह देहात भी नहीं था जहाँ हर कोई, हर किसी के घर की भीतरी बातें तक जानता हो या हर कोई कमोबेश एक ही तरीके से अपना जीवनयापन करता हो।

पाँच क्लासों पूरी पढ़ने के बाद हाई स्कूल करने में लोगों को जितना समय लगता है, मुझे उससे ज़्यादा समय नहीं लगा था, लेकिन कई बच्चों को लगा था। किसी को भी यह उम्मीद नहीं होती थी कि जितने बच्चों ने दर्जा नौ में दाखिला लिया है, वे सभी-के-सभी दर्जा तेरह से पास होकर निकलेंगे या सभी-के-सभी व्याकरण में एक जितने ही पारंगत होंगे। बच्चे पार्ट-टाइम नौकरियाँ पकड़ लेते थे जो जल्द ही फुल-टाइम नौकरियों में तब्दील हो जाती थीं। लड़कियाँ इस बीच शादी कर लेती थीं और उनके बच्चे भी हो जाते थे। तेरहवें दर्जे में बमुश्किल एक चौथाई बच्चे बचते, ऐसा महसूस होता कि वे सब-के-सब आला दर्जे के विद्वान हैं। उस दर्जे तक पहुँचना बड़ी उपलब्धि की तरह होता। या एक खास किस्म का अव्यावहारिक नशा होता, भले बाद के जीवन में आपके साथ कुछ भी घटित हो जाए।

मुझे महसूस होता कि दर्जा नौ में मैं जिन बच्चों के साथ पढ़ी हूँ, उनसे एक पूरी उम्र की दूरी पर खड़ी हो चुकी हूँ। ऐसे में अपने पहले स्कूल के





बच्चों को तो जाने कितना दूर महसूस करती।

\*\*\*

मैं जब भी डायनिंग हॉल का फर्श साफ करती, एक चीज़ मुझे हमेशा चौंका देती। मुझे पता था कि वह क्या है - एक बिलकुल नया-नवेला गोल्फ बैग, जिसमें कई स्टिक्स और गेंदें थीं। मैं सोचती कि आखिर यह हमारे घर में क्यों है। मुझे उस खेल के बारे में कुछ नहीं पता था, लेकिन उसे खेलने वालों के बारे में मैं हमेशा कल्पना करती थी। वे लोग मेरे पिता की तरह पूरे कपड़े नहीं पहनते होंगे। हालाँकि, मेरे पिता जब शहर में काम के लिए जाते थे, तो अच्छी पैंट पहनते थे। एक हद तक मैं यह कल्पना भी करती थी कि मेरी माँ ने खिलाड़ियों की तरह कपड़े पहन रखे हैं, अपने माथे पर स्कार्फ बाँध रखा है और उसके बाल हवा में उड़ रहे हैं। लेकिन मैं यह कल्पना नहीं कर पाती थी कि वह गेंद को गोल्फ के मैदान के छेद में डाल देने की कोशिश कर रही होगी। मुझे लगता था कि यह बड़ा तुच्छ-सा काम है और यह माँ के बूते के बाहर है।

ज़रूर वह हमारे बारे में भी अलग ही सोचती होगी। ज़रूर उसने कभी सोचा होगा कि मैं और मेरे पिता एक दिन बिलकुल अलग किस्म के शख्स बन जाएँगे। उस किस्म के शख्स जो विलासिता की चीज़ों में लगे रहते हैं। जैसे गोल्फ। डिनर पार्टी। शायद उसने खुद को विश्वास दिला दिया होगा कि

कुछ सीमाएँ अब टूट चुकी हैं। उसने खुद को अपने पुश्तैनी खेतों से दूर कर लिया था। उसके पुश्तैनी खेत मेरे पिता के पुश्तैनी खेतों से भी गए-गुजरे थे। वह एक स्कूल में टीचर हो गई थी। उसने ऐसे लहज़े में बोलना शुरू कर दिया था कि उसके रिश्तेदार तक उसके पास आने में असहज हो जाते थे। उसने सोचा होगा कि ऐसा करने के बाद हर जगह उसका स्वागत और सम्मान होगा।

मेरे पिता के विचार कुछ और ही थे। ऐसा नहीं है कि वह शहर वालों को खुद से बेहतर समझते हों। पर वह ऐसा ज़रूर सोचते थे कि शहर वाले खुद को ज़रूर उनसे बेहतर समझते हैं। उन्होंने शहर वालों को कभी वैसा जताने का मौका नहीं दिया।

ऐसा लगता है कि जहाँ तक गोल्फ की बात है, मेरे पिता ही विजयी रहे होंगे।

ऐसा भी नहीं है कि वह उस तरह रहकर सन्तुष्ट हुए हों, जिस तरह उन्हें उनके माँ-पिता रखना चाहते थे। जब मेरी माँ के साथ उन्होंने अपना समाज छोड़ा था और एक अनजान शहर से लगी सड़क के इस आखिरी छोर पर ज़मीन का यह टुकड़ा खरीदा था, तब निश्चित ही उनके दिमाग में था कि वे सिल्वर फॉक्स पालेंगे, उसके फर को बेचकर सम्पन्न होंगे और बाद में मिक के कम्बलों का व्यवसाय शुरू कर देंगे। जब मेरे पिता छोटे थे, तब उनका मन न तो खेतों

में लगता था और न ही पढ़ाई में, बल्कि उन्हें जानवर पकड़ने में बड़ा मज़ा आता था। तब उससे उन्होंने पैसे भी कमाए थे। उस कालखण्ड को वह अपने जीवन का सबसे सुखी समय मानते हैं। वह उनके दिमाग से ऐसा चिपका कि उन्होंने कम उम्र में ही तय कर लिया था, बड़ा होकर यही काम करना है। उन्होंने अपनी सारी जमा-पूँजी उसमें लगा दी। नौकरी से माँ ने जो पैसे बचाए थे, वह भी उसमें लगा दिए। उन्होंने अपने जानवरों के लिए बड़े अहाते बनाए और तार के बाड़ों से उन्हें घेर दिया। बारह एकड़ की वह जगह काफी थी। वहाँ चारागाह के लिए भी अच्छी-खासी जगह थी, जहाँ हमारी गाएँ चर सकती थीं। उसी जगह में उन बूढ़े घोड़ों को भी बाँधा जाता था, जो मरने के बाद हमारी लोमड़ियों का आहार बन जाते। चारागाह सीधे नदी किनारे जाकर खत्म होता था। उसमें बारह विशालकाय पेड़ थे, जो छाया के काम आते।

अब जैसा कि मुझे याद पड़ता है, उस समय बेहद हिंसा थी। बूढ़े घोड़े मांस के लोथड़ों में तब्दील हो जाते थे। जिन जानवरों के फर का इस्तेमाल किया जा सकता था, उन्हें हर साल चुन-चुनकर मारा जाता था। सिर्फ़ उन्हीं को बर्खा जाता था, जो नए बच्चे पैदा कर सकें।

\*\*\*

पर मुझे उस सबकी आदत पड़ चुकी

थी। मैं बड़ी आसानी-से वह सब नज़रअन्दाज़ कर देती थी। मैं अपने लिए एक ऐसी दुनिया बना लेती थी जो उन्हीं किताबों की तरह पवित्र होती, जिन्हें मैं पढ़ा करती थी। इन सब में मैं उन विशालकाय पेड़ों की मदद लेती, उनकी छाँव में लेटी रहती। चमकती हुई नदी ने भी मेरी मदद की। वह चश्मा मुझे चौंकाता था जो नदी से थोड़ा ऊपर ही फूटा था, जहाँ मरियल घोड़े और गाएँ पानी पीते थे। मैं अपने साथ टिन का एक मग लिए रखती। मैं उसी से अपने लिए पानी निकालती। आसपास ताज़ा खाद मौजूद होती और मैं आसानी-से उसे उपेक्षित कर देती थी।

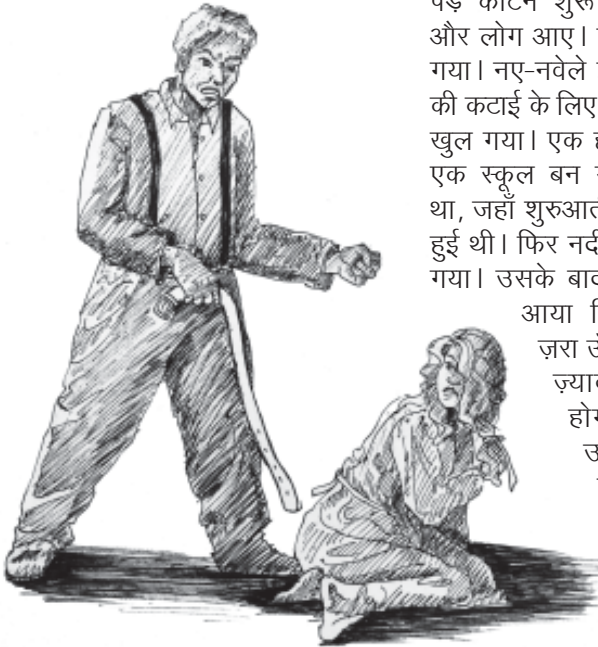
उन दिनों मुझे अपने पिता की मदद करनी पड़ती थी, क्योंकि मेरा भाई अभी उतना बड़ा नहीं हुआ था। मैं पम्प चलाकर ताज़ा पानी निकालती थी, अहाते में घुस जानवरों की हौदियाँ साफ़ करती थी। उनमें दुबारा पानी भरती थी। मुझे उस काम में मज़ा आता था। यह सोचकर अच्छा लगता था कि यह काम कितना महत्वपूर्ण है। उसे करते समय आसपास जो अकेलापन छा जाता था, उसे महसूस करके आनन्द आता था। जब हम बड़े हुए, तो मुझे घर के भीतर रहने के लिए कह दिया गया। वहाँ मुझे माँ की मदद करनी पड़ती। इससे मुझे बेहद गुस्सा आता। कई बार मेरे झगड़े होते। मेरे जवाबों के बारे में कहा जाता कि यह 'ज़बान लड़ाती' है। मेरी माँ कहती



थी कि मैं उसे ठेस पहुँचाती हूँ। नतीजा यह होता कि वह धम्म-धम्म करते खलिहान तक पहुँच जाती और वहाँ पिता से मेरी शिकायत करती। वह अपना काम बीच में ही छोड़ घर आ जाते और अपनी बेल्ट से मेरी पिटाई करते (उन दिनों यह एक बेहद प्रचलित सज़ा थी)। उसके बाद घण्टों मैं अपने बिस्तर में मुँह ढापे लेटी रोती रहती और घर से भाग जाने की योजनाएँ बनाया करती थी।

\*\*\*

वह दौर भी गुज़र गया और मैं किशोरावस्था में आ गई। अब मैं आसानी-से सँभाले जा सकने लायक



बन चुकी थी। मैं चुहलखोर भी हो गई थी। शहर में जो चीज़ें देखती, घर लौटकर उन चीज़ों को बड़े मनोरंजक तरीके से दुहराती।

हमारे घर का आकार ठीक-ठाक था। यह कब बना था, किसी को नहीं पता, फिर भी ऐसा अन्दाज़ा था कि इस घर की उम्र अभी सौ साल नहीं हुई है। ऐसा अन्दाज़ इसलिए कि 1858 में पहली बार कोई व्यक्ति इस इलाके में आया था। तब यहीं कहीं बोडमिन नाम की कोई जगह थी, जो अब विलुप्त हो चुकी है। वह लकड़ी का एक बेड़ा खेते हुए नदी के ज़रिए यहाँ तक आया था। आकर उसने यहाँ के पेड़ काटने शुरू कर दिए। धीरे-धीरे और लोग आए। फिर पुरा गाँव ही बस गया। नए-नवेले इस गाँव में लकड़ियों की कटाई के लिए जल्द ही एक आराघर खुल गया। एक होटल, तीन चर्च और एक स्कूल बन गए। यह वही स्कूल था, जहाँ शुरुआती दो साल मेरी पढ़ाई हुई थी। फिर नदी पर एक पुल बनाया गया। उसके बाद लोगों को समझ में आया कि उस पार ज़मीन ज़रा ऊँची है और वहाँ रहना ज़्यादा सुविधाजनक होगा। ज़्यादातर लोग उस पार चले गए। पीछे यह मूल गाँव बच गया जिसे अब सम्मान की निगाह से नहीं देखा जाता।

ऐसा लगता है कि हमारा घर यहाँ के बहुत पुराने मकानों में से नहीं रहा होगा क्योंकि हमारे घर की दीवारें ईंट से बनी थीं, जबकि उससे पुराने मकानों की दीवारें लकड़ी से बनी थीं। पर यह ज्यादा नया भी नहीं रहा होगा। हमारा मकान गाँव की ओर पीठ किए था। हमारे मकान के चेहरे के आगे ढलान वाले खेत थे, जो नीचे उतरते हुए नदी को उस जगह जाकर छूते थे, जहाँ नदी एक बड़ा बल खाती थी। उस जगह को लोग चौड़ा मोड़ कहते थे। नदी के उस ओर सदाबहार हरियाली वाले पेड़ों का घना जंगल था। हमें वे देवदार की तरह लगते थे, पर वे इतना दूर थे कि हम असल में कभी नहीं जान पाए कि वे क्या थे। उससे भी दूर, एक दूसरी पहाड़ी पर एक और घर था, इतनी दूर से बहुत छोटा दिखता था। उसका मुँह हमारे ही घर की ओर था। हम कभी उस मकान तक नहीं गए। मुझे लगता था कि किताबों में बौनों के घरों के बारे में जो मैं पढ़ती हूँ, यह वही घर है। पर उस घर में रहने वाले शख्स का नाम हमें पता था, या यूँ कहूँ कि वह शख्स किसी एक ज़माने में उस घर में रहा था और अब वह मर-खप चुका है। उसका नाम था रोली ग्रेन। यह जो मैं लिख रही हूँ, उसमें अब इस आदमी का कोई ज़िक्र नहीं आएगा। क्योंकि मैं कहानी नहीं लिख रही, बल्कि इस समय सिर्फ जीवन लिख रही हूँ।

\*\*\*

मेरे पैदा होने से पहले मेरी माँ का दो बार गर्भपात हो गया था। 1931 में जब मैं पैदा हुई, तब सभी ने राहत की साँस ली थी। लेकिन हालात कठिन-से-कठिन होते जा रहे थे। सच तो यह था कि मेरे पिताजी ने फर के व्यापार में उतरने में बहुत देर कर दी थी। जिस तरह की सफलता की उन्होंने कामना की थी, वह बीस के दशक के मध्य के बरसों में ही मिलना सम्भव थी, क्योंकि तब फर एक नई चीज़ थी और तब लोगों के पास पैसा भी था। पर उन्होंने तब अपना व्यापार शुरू नहीं किया। फिर भी हम सबने वह समय काट लिया। युद्ध की शुरुआत और युद्ध के मध्य का वह दारुण समय। युद्ध खत्म होते-होते शायद कोई उम्मीदवान झोंका आया था, क्योंकि उस साल पिता ने घर की मरम्मत करवाई थी, पारम्परिक लाल ईंटों की दीवारों पर भूरा रंग पुतवाया था। उस घर में ईंटों की चिनाई बेहद गड़बड़ तरीके से की गई थी। उनमें इतनी जगह छूटी थी कि ठण्ड को वे बाहर नहीं रोक पाती थीं। उन्होंने सोचा होगा कि रंग कर देने से वे दरारें भर जाएँगी और ठण्डी हवा बाहर ही रुक जाएगी, पर वैसा कभी हुआ हो, यह मुझे याद नहीं पड़ता।

फिर भी, अब हमारे यहाँ एक बाथरूम बन गया। चौड़ी-सी एक सीढ़ी थी, जिसका कोई उपयोग न जान उसे किचन के कपबोर्ड में तब्दील कर दिया गया। बड़े-से डायनिंग रूम को

रेगुलर रूम बना दिया गया। उसी से लगकर सीढ़ियाँ थीं। इस बदलाव ने मुझे अप्रत्याशित राहत दी। मेरे पिताजी उस पुराने कमरे में ही मेरी पिटाई करते थे। मैं उसी कमरे में पिटने की शर्मिंदगी और दुख झेलती थी, मर जाने की इच्छा का रिश्ता उसी कमरे से था। उस जगह नया कमरा बन जाने से धीरे-धीरे यह मेरी कल्पना से भी बाहर हो गया कि पिछले सालों में मेरे साथ क्या हुआ था। मैं हाई स्कूल में पढ़ रही थी और हर साल पहले से बेहतर नम्बर लाती। अब सिलाई और सुलेख पीछे छूट चुके थे, सोशल स्टडीज़ इतिहास की चीज़ हो गई थी और अब लैटिन सीखी जा सकती थी।

घर को नए तरीके से सजाने की आशावादिता के बाद भी जाने कैसे हमारे परिवार का व्यवसाय सूख गया। इस बार लाख जतन करने पर भी उसमें जान न लौटी। पिता ने सारी लोमड़ियाँ, सारे मिनक निकाल दिए। बदले में उन्हें इतने कम पैसे मिले कि हम सब कई दिनों तक सदमे में रहे। उसके बाद उन्होंने आसपास के इलाकों में बढ़ई या राजमिस्त्री का काम पकड़ लिया। दिन-भर ये काम करते और शाम पाँच बजे धातुओं के कारखाने में चले जाते। घर लौटते-लौटते उन्हें आधी रात हो जाती।

स्कूल से आते ही मैं पिता के लिए खाना बनाने लग जाती। कभी उनके लिए गोश्त के टुकड़े तलती और उन पर ख़ूब सारा केचअप लगाती। उनकी

थर्मस में कड़क काली चाय भरती। केक के छोटे टुकड़ों पर जैम लगाती या फिर घर में ही उनके लिए कचौड़ियाँ बनाती। कभी मैं बनाती, कभी माँ बनाती, पर धीरे-धीरे माँ के व्यंजन गैर-भरोसे लायक होते चले गए।

\*\*\*

**हमारे** ऊपर एक चीज़ टूट पड़ने वाली थी, जिसकी हमने कभी उम्मीद भी नहीं की थी। वह चीज़ कम आमदनी से भी ज़्यादा विनाशकारी होने वाली थी, हालाँकि अभी तक हमें उसके बारे में पता भी नहीं था। यह पार्किन्सन्स रोग की शुरुआत थी। मेरी माँ में उसके लक्षण तभी दिखने लगे थे, जब वह चालीस की दहाई में ही थी।

शुरुआत में तो कुछ भी खराब नहीं लगा। कभी-कभी उसकी आँखें उसके सिर में घँस चुकी जान पड़तीं, अजीब तरह से भटकने लगतीं और उसके होंठों के किनारों से बहते अनियंत्रित थूक की लकीरें दिखने लगतीं। किसी की मदद से सुबह वह कपड़े आदि पहनकर तैयार हो जाती, फिर दिन-भर घर के छोटे-मोटे काम निपटाती रहती। यह बेहद आश्चर्य-जनक है कि लम्बे समय तक उसने अपने भीतर की हिम्मत बचाए रखी थी।

आप सोच सकते हैं कि अब तो हद हो चुकी। धन्धा चौपट हो गया, माँ की तबीयत बर्बाद होने लगी है। कहानियों में ऐसा नहीं होता। पर

सबसे अजीब चीज़ है कि मैं अपने जीवन के उस समय को किसी नाखुश समय की तरह याद नहीं कर पाती। घरवालों के भीतर कोई हतोत्साहित करने वाला माहौल नहीं था। शायद इसलिए कि किसी को वह सब समझ में ही नहीं आया। शायद सभी लोग इस उम्मीद में थे कि माँ जल्द ही ठीक हो जाएगी, पर उसकी हालत खराब होती गई। जहाँ तक पिता की बात है, उन्होंने अपनी हिम्मत बहुत संजोकर रखी थी। वे कारखाने में जिन लोगों के साथ काम करते थे, उन्हें पसन्द भी करते थे। वे सारे लोग उन्हीं की तरह थे, जिन्होंने अपने-अपने जीवन के कंधे पर किसी-न-किसी तरह का अतिरिक्त बोझ लाद

रखा था। वे उन सारे अतिरिक्त कामों का मज़ा लेते थे, जो उन्हें कारखाने के अलावा भी करना होता था। वह कारखाना धातु के स्टोव बनाता था जो कि पूरी दुनिया में बिकते थे। यह खतरनाक काम था, पर पिता कहते थे कि वह सिर्फ तभी खतरनाक दिखता, जब उस काम को खतरनाक रूप में देखा जाता। और वहाँ से उन्हें पैसे अच्छे मिल जाते। उनके लिए सबसे अहम बात यही थी।

मुझे लगता है कि उन्हें घर से बाहर निकल जाना पसन्द रहा होगा। भले घर से निकलने के बाद उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती हो, जोखिम भरे काम करने पड़ते हों। किसी भी तरह घर से बाहर निकल जाना और उन लोगों के बीच पहुँच जाना जो उन्हीं की तरह समस्याओं से दूर आ गए हों।

शाम को उनके जाने के बाद मैं फिर खाना बनाने की तैयारी में लग जाती। मैं वही चीज़ें बना पाती थी, जिन्हें अपनी नज़र में मैं शानदार मानती, जैसे कि ऑमलेट या सेवइयाँ। पर वह सब भी तब तक, जब तक कि ये सस्ती थीं। रात के बर्तन धोने के बाद मेरी बहन का ज़िम्मा होता कि उन्हें सुखाया जाए। हमें अपने भाई को कोंच-कोंच के कहना पड़ता कि जाओ, बर्तन धोने



से जमा हुआ यह पानी बाहर खेतों में फेंक आओ। (मैं वह खुद भी कर सकती थी, पर हुक्म सुनाना मुझे अच्छा लगता था।)

मैं बड़ी-सी अँगीठी के पास पैर पसारकर बैठ जाती। उस अँगीठी का दरवाज़ा कब का टूट चुका था। वहाँ बैठ शहर की लाइब्रेरी से लाए मोटे-मोटे उपन्यास पढ़ा करती थी। जैसे कि 'इंडीपेंडेंट पीपुल' जो कि आइसलैंड के जीवन पर था। मैं पाती कि वहाँ के लोगों का जीवन तो हमसे भी कठिन है और उम्मीद की कोई किरण भी नहीं है। या 'रिमेंबरेंस ऑफ थिंग्स पास्ट' पढ़ा करती, उस उम्र में जिसकी कोई भी बात मेरे पल्ले नहीं पड़ती थी, फिर भी उसे पढ़ना मैं बन्द नहीं करती थी। या 'द मैजिक माउंटेन',

जो कि तपेदिक पर था और दो विपरीत विचारों के मध्य बहस का आख्यान था। उसके एक तरफ प्रसन्न प्रगतिशील जीवन के विचार थे, तो दूसरी तरफ घोर निराशा के रोमांचकारी अँधेरे थे। इस अनमोल समय में मैं कभी अपने स्कूल का होमवर्क नहीं करती थी। पर जब परीक्षाएँ आतीं, मैं सारी रात जागकर पढ़ाई करती। उन सारी चीज़ों में सिर खपाती, जिन्हें दरअसल मुझे जानना बनता था। मुझमें कुछ समय तक चीज़ों को ज्यों-का-त्यों याद रखने की अद्भुत क्षमता थी और उस समय मेरी मदद सबसे ज़्यादा उसी ने की।

चाहे मेरे आसपास कितनी ही कठिनाइयाँ थीं, मैं हमेशा खुद को बेहद भाग्यशाली मानती थी।

...जारी

**एलिस मुनरो:** कनाडियन, अँग्रेज़ी भाषा की लघु-कथा लेखक जिन्होंने साहित्य के लिए 2013 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। इसके अलावा *गवर्नर जनरल्स अवॉर्ड*, *मैन बुकर अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार* व *गिलर पुरस्कार* समेत अन्य पुरस्कारों से सम्मानित। ऐसा वर्णित किया जाता है कि इन्होंने लघु-कथाओं की संरचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया था, खासकर कहानियों में आगे और पीछे समय में जाने की प्रकृति में। इनकी रचनाओं का तेरह भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। मुनरो की कहानियों के बारे में कहा जाता है कि उनमें घोषणाएँ कम एवं छिपी हुई बातें ज़्यादा होती हैं और बातों का जुलूस निकलने की बजाय कोई भी बात धीरे-से और सामान्य तरीके से कह दी जाती है।

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: गीत चतुर्वेदी:** कवि, लघु कहानी लेखक, पत्रकार और अनुवादक। कविता के लिए *भारत भूषण पुरस्कार* और उपन्यास के लिए *कृष्ण प्रताप पुरस्कार* से सम्मानित।

**सभी चित्र: भारती तिहांगर:** जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स में स्नातक। स्कूल ऑफ कल्चर एंड क्रिएटिव एक्सप्रेसंस, अम्बेडकर यूनिवर्सिटी से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं।

यह कथानक सर्वप्रथम सितम्बर 2011 में न्यू यॉर्कर पत्रिका में प्रकाशित हुआ था और 2012 में 'मैककललैंड और स्टीवर्ट' प्रकाशक द्वारा प्रकाशित लघुकथा संग्रह में छपा था।